INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 12 | ISSUE - 7 | AUGUST - 2022

केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में ग्रामीण जीवन के सामाजिक आयाम

रचना शुक्ला[1] & डॉ. परमानन्द तिवारी[2]
[1]शोधार्थी हिन्दी, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.).
[2]प्राचार्य, शासकीय तुलसी महाविद्यालय, अनूपपुर (म.प्र.).

सारांश –

केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में ग्रामीण जीवन की अवधारणा, शोषण, संघर्ष, समाज में ऊँच–नीच की भावना, छुआछूत, वर्ग–संघर्ष, आर्थिक विषमताएँ, विधवा समस्या, बाल–विवाह, वैवाहिक समस्याएँ, अमीर–गरीब जैसी विषमता मूलक सामाजिक आघात की प्रतिक्रिया स्वरूप चमत्कार को प्रदर्शित करती है। समाज के नियमों एवं विधानों में स्वेच्छाचारिता, नृशंसता, ऐच्छिक क्रिया–व्यापारों, कार्य कलापों का विरोध तथा उसकी निंदा की दृढ़ भावना का स्वर सामाजिक चेतना के मानदंड है।

मुख्य शब्द – केदारनाथ अग्रवाल, काव्य, ग्रामीण जीवन एवं समाज।

प्रस्तावना –

साहित्यकार युग चेतना से प्रभावित होता है, जो साहित्यकार सामाजिक जीवन के साथ प्रतिबद्ध होता है, वह अपने साहित्य को प्रभावकारी साहित्य बनाता है। साहित्यकार समाज का सदस्य होने के कारण उसका सृजन–क्षेत्र सामाजिक चेतना से जुड़ा रहता है। साहित्यकार समाज का प्रतिनिधित्व करता है। अतः उसकी सर्जना में समाज का प्रतिबिंब रहता है। सामाजिक आयाम के संदर्भ में यह बात स्पष्ट होती है कि साहित्य समाज को दृष्टि देता है। यही कारण है कि आज के व्यक्ति और समाज का संघर्ष कवि केदारनाथ की कविताओं में प्रतिफलित हुआ है।

केदारनाथ अग्रवाल जी ने भी ग्रामीण चेतना के विभिन्न मूल्यों को उनके समकालीन सन्दर्भों के साथ प्रमाणिक ढंग से अभिव्यक्त किया है। 'कमासिन मेरा गाँव' नामक रचना कवि के जन्मभूमि के अतीत को व्यक्त करती हैं गाँव के साथ जुड़े उज्ज्वल इतिहास को बताते हुए कवि लिखते हैं कि 'कमासिन' एक पुराना गाँव है, जो अतीत में कभी आबाद हुआ होगा, फिर उसके विकास में कई शताब्दियाँ लगी होंगी। किसी भगवान ने इसे नहीं बनाया अपितु किसानी पुरखों ने बंजर जमीन को जोतकर इसे यह रूप दिया है। राहहीन बाधा से राह को उबारते हुए, जीवन की नई दिशा खोजते हुए यहाँ साहसिक पुरखे बसे हैं, किन्तु वर्तमान स्थिति में मेरा गाँव 'दिल्ली' से बहुत दूर है। यहाँ दिल्ली से तात्पर्य भौतिक प्रगति, सुख तथा सुविधाओं से है। सदैव पीड़ित–पराजित–अपमानित और त्रस्त, भय और भूख तथा बीमारियों से ग्रस्त रहा है–

''वर्तमान में दिल्ली से बहुत दूर
पीड़ित, पराजित, अपमानित और त्रस्त
भय और भूख और बीमारियों से ग्रस्त जी रहा है।''[1]

कवि ने सदैव युगबोध को पकड़ना चाहा है। वे एक राज की बात बताते हुए लिखते हैं कि आज 'कौआ' दाल–भात खा रहा है और आदमी को खा रहा है– आदमी का 'हौआ'। यहाँ 'हौआ' शब्द का अर्थ घमंड, स्वार्थ, ईर्षा, द्वेष आदि। इस स्थिति का जिम्मेदार खुद आदमी है। उसने ही इस वास्तविकता को जन्म दिया है। 'दाल–भात खा रहा है कौआ' इस दिशा में उल्लेखनीय रचना है। सत्य, अहिंसा, सहयोग, सद्भाव, परोपकार, त्याग, बलिदान, साहस, धैर्य, विवेक आदि मानवीय मूल्यों को स्वार्थ, ईर्षा, द्वेष, हिंसा आदि प्रभावित कर रहे हैं। जिसके कारण समाज में विषम (विकृत) स्थितियाँ पनप रही हैं।

मानवीय जीवन में संस्कारों का बहुत महत्त्व होता है। पूँजीपति जिसने जीवन में मात्र दूसरों का शोषण ही किया है, वह अपने बेटे को क्या दे पायेगा? दूसरी ओर मजदूर वह अपने पुत्र को विरासत में क्या देता है? इसका तुलनात्मक चित्रण करते हुए कवि लिखते हैं कि पूँजीपति अपने बेटे को बेहद काला दिल देता है, गद्दी पर बैठने के लिए भारी भरकम तन देता है, बहुत धन देता है, धन के साथ रति क्रीड़ाएँ करने के लिए रूपवती औरत देता है। तो कठोर परिश्रम करने वाला मजदूर अपने बेटे को परोपकारी बनाता है, मेहनत करने की पूरी प्रेरणा देता है, पाँवों में हाथी की चाल, अविजित छाती, ऊँचा कन्धा, आफत से लड़ने की गति तथा बल देता है, टूटी कुटिया और खटिया देता है, घर का भार उठाने वाली श्रमजीवी धरनी (पत्नी) देता है।

शोषितों और पीड़ितों के जीवन के मार्मिक बिंब प्रस्तुत करते हुए केदार जी ने अपनी अनेक कविताओं में शोषित शिशुओं व नारियों के बिंब भी ईमानी शैली में प्रस्तुत किये हैं। शोषित शिशु का चित्र 'बाल भिखारिन' कविता में स्पष्ट दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त मजदूरों की गरीबी को देखते हुए उनके बच्चों को भूख से बिलबिलाते हुये देखकर कवि कहते हैं कि इनके बच्चे भूख के कारण असमय मौत के शिकार हो जाते हैं। जैसे–

''यही होता है भूख में/ बिना खाए जान जाती है/
वक्त से पहले/बिना बुलाये मौत आती है।''[2]

इस तरह भारत की दर्दुशा पर अन्यमनस्क दशा में सोचते समय कवि का ध्यान उन किसानों पर आकर्षित हुआ जो आर्थिक शोषण के शिकार हैं। केदार जी के समय में भी यह समस्या थी। इस ग्रामीण समस्या को कवि ने सजीव रूप दिया है। जो किसान की समस्या और मानसिकता को दर्शाता है –

''मेरे खेत में हल चलता है/.....फाड़ कलेजा गड़ जाता है/...
मेरा तन–मन खप जाता है/ मिट्टी का तन नरमाता है/
मेरे खेत में हल चलता है/ मैं युग की निद्रा खोता हूँ।''[3]

इसी प्रकार कवि ने ग्रामीण शिक्षा की अव्यवस्था का खुला चित्रण किया है। उदाहरणार्थ –

''विद्या के महँगे हैं दाम, पढ़ना नहीं सहज है काम
टीचर करते हैं कुहराम, बालक होते हैं बदनाम।''[4]

किसी छोटे से गाँव में शिक्षा की स्थिति और गंभीर होती है। शिक्षा सुविधाओं का अभाव खटकता है। ग्रामीण विद्यार्थियों को शिक्षा के लिए गाँव छोड़ना पड़ता है। इस स्थिति से स्वयं कवि को गुजरना पड़ा है।

ग्रामीण जीवन में शिक्षा का अभाव इसलिए है कि गाँवों में शिक्षा संबंधी विसंगतियाँ ज्यादा हैं। यहाँ लोग न आर्थिक रीति से संपन्न हैं न शिक्षा के प्रचार–प्रसार की सुविधाएँ हैं। इसलिए गाँव नगरों की अपेक्षा अधिक पिछड़ा हुआ है।

विश्लेषण –

केदारनाथ जी के काव्य में उनकी सामाजिक अभिव्यक्ति, स्वरूप एवं अवधारणाओं को समझने के लिए हम उन्हीं के कथन को प्रश्रय देते हैं। उन्होंने स्वयं अभिव्यक्त किया है कि – 'मैं शुरू से ही जग और जीवन की विविधता और बहुरूपता को सही दृष्टिकोण से बूझता और कूतता रहा हूँ। मुझे ऐसा करने में आत्मपरक एवं वस्तुपरक संघर्ष करना पड़ा है और अब भी करता रहता हूँ .....। मुझे गाँव में रहकर अपने देश की ऋतुओं का पूरा परिचय मिल चुका था। मैं धूप में नंगे पाँव दौड़कर धूप को पी लेता था। बरसात में बरसते पानी में भीगकर मैं भीतर तक बादल–बिजली की क्रीड़ाएँ भर लेता था। ...देहात का जन–जीवन सम्बंध और संपर्क का जीवन था।''[5]

डॉ. रामेश्वर शर्मा के शब्दों में– ''सामाजिक जीवन की विभिन्न भूमिकाओं की सृष्टि के मूल में कवि की व्यापक दृष्टि है। उसकी कविताओं का व्यापक 'कैनवास' उनके युग–दर्शन का परिचायक है।'' कवि ने स्वयं 'लोक और आलोक' संग्रह की भूमिका में स्पष्ट लिखा है कि– ''वह कविता और सामाजिकता दोनों के महत्त्व को स्वीकार करता है और दोनों के समन्वय को ही कल्याणकारी मानता है।''[6]

डॉ. रामविलास शर्मा उनकी सामाजिक चेतना के विषय में लिखते हैं– ''तारसप्तक के अनेक कवियों के पास कम्युनिस्ट विचारबोध तो था लेकिन जुझारू किसान या मजदूर का भावबोध नहीं था। इसके अभाव में उनके पैर उखड़ गए, केदार ने अपने पैर जमाए रहे, ... एक बार अखिल भारतीय पैमाने पर जन–आंदोलन का प्रसार होने दो, प्रचार करने वाले लोग केदार की कविताएँ ढूँढ़–ढूँढ़कर पढ़ेंगे।''[7] समकालीन कविता में केदारनाथ जी एकमात्र ऐसे कवि हैं जिन्हें हम बेझिझक आज के समाज का जनकवि कह सकते हैं। क्योंकि कवि ने ग्रामीण समाज से जुड़कर उनकी संवेदनाओं को अनुभव किया है और साहित्य के माध्यम से जन–जन तक पहुंचाया है।

केदारनाथ अग्रवाल जी की कविता में श्रमिकों, पीड़ितों और किसानों को काव्य में विशिष्ट स्थान देकर युगीन वैषम्य और आस्था के ओज भरे स्वरों को मुखरता दी है। इसी कारण डॉ. रामविलास शर्मा जी ने केदारनाथ जी को 'श्रम का सूरज' मानते हुए लिखा है– ''केदार ने श्रम करते हुए मनुष्यों पर जितना लिखा है, उतना हिंदी के बहुत कम कवियों ने लिखा होगा। प्रगतिशील कविता जहाँ व्यक्तिवाद के दायरे में बंद न होगी, वहाँ वह श्रम की ओर उन्मुख होगी ही।''[8] इस प्रकार केदारजी जनता से जुड़े हुए ही नहीं, बल्कि जनता से निकले हुए साहित्यकार हैं।

केदार जी की रचनात्मकता का आधार ग्रामीण था। पत्नी का मायके जाना कवि को अखर गया। उनकी पारिवारिक धारणा ग्रामोचित कही जा सकती है। परिवार समाज का अंग होता है। इस परिप्रेक्ष्य में कवि की प्रेम विषयक विचारणा निम्न पंक्तियों में अवलोकनीय है–

"हे मेरी तुम
कल कमीज में बटन नहीं थे
आलू और अनाज खतम था
लालटेन अंधी जलती थी
हाय राम मेरी आफत भी
अब बोलो तुम
कब आओगी
घर सँवारने।''[9]

केदारनाथ जी की प्रेमसंबंधी कविताओं के केंद्र में उनकी सहधर्मिणी है, जिनके स्नेह वर्णन में दांपत्य जीवन का अनुराग सहज रूप में प्राप्त हुआ है। 'जीने का उल्लास जगा दो' कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है–

''हे मेरी तुम!/कटु यथार्थ से लड़ते–लड़ते/
अब न लड़ा जाता है मुझसे/हे मेरी तुम/
अब तुम ही थोड़ा मुसका दो/ जीने का उल्लास जगा दो।''[10]

इसी तरह परिवार प्रेम की अभिव्यक्ति का एक भावभीना उदाहरण 'जीने का अभ्यास करें' नामक कविता में देखा जा सकता है–

''हे मेरी तुम! आओ, बैठे पास–पास/ हम हास और परिहास करें,/
एक–दूसरे को निहारकर/जीने का अभ्यास करें।''[11]

यह प्रेम नितांत वैयक्तिक नहीं समाज–सापेक्षता लिये हुए है। उसमें सांसारिक जीवन की उथल–पुथल है, झंझावात है।

इसके अतिरिक्त कवि ग्रामीण रचना संसार में प्रेम अनश्वर सौंदर्य को रेखांकित करती कई कविताएँ सम्मिलित हैं। जिसमें –

''रेत मैं हूँ जमुन–जल तुम! मुझे तुमने/
हृदय तल में ढँक लिया है/.....
रात क्या दिन क्या/ प्रलय क्या पुनर्जीवन।''[12]

इस कविता के संदर्भ में डॉ. कृष्णचंद गुप्त का कथन है– ''केदारजी के पत्नी प्रेम को यदि किसी एक कविता के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है तो निः संदेह यही है वह कविता। प्रणय काव्य में एक–से बढ़कर एक उपमान दिए गए हैं। प्रिय और प्रेमिका के लिए, लेकिन रेत और जमुन जल का यह उपमान पारस्पारिक समर्पण, गंभीरता, शीतलता और अन्योन्याश्रयता अर्थात् रेत की जलन–खुरदरापन और जल की तरल शीतलता की अद्‌भुत व्यंजना है, अभूत पूर्व भी हो सकती है।''[13]

'जमुन जल तुम' संग्रह में संकलित 'कल्पकता–सी सुधर सलोनी', 'खुलकर खेलता है दिनभर आँखन में' तथा 'कोमल कुसुम से भी लाल है ललित अंग' आदि कविताएँ कवि के बच्चों के प्रति वात्सल्य प्रेम को प्रकट करती हैं। इन कविताओं के अतिरिक्त 'प्यारी! मेरे जन्म गाँव में' इस कविता में कवि जन्म से लेकर सतत विकसित हुए अपने जीवन को पत्नी प्रिया के साथ स्मृति के झरोखे से निहारता है।

सामाजिक आयाम के प्रसंग में कवि केदारनाथ जी अस्पताल में अंतिम साँसें ले रही पत्नी प्रिया से स्वयं के लिए कुछ भी नहीं माँगते हैं, जो भी माँगते हैं, अपने परिवार जनों के लिए और पत्नी को अंतिम यात्रा करने की याचना करते हैं। कवि की यही सच्ची मानवता और सामाजिकता इन शब्दों में प्रकट हुई है –

''इस दुनिया को अभी न छोड़ो,/ प्रिया प्रियवद/ आँखें खोलो;/
शुभाशीश दो प्रिय अशोक को,/प्रिय पोतों को/ बहू ज्योति को;/...
और/जियो, तुम महाकाल को/मन से जीतो; सुख सरसाओ/''[14]

'मेरा गाँव' रचना में जहाँ एक ओर प्राकृतिक सुंदरता का चित्रण किया है, वहीं दूसरी ओर ग्रामीण चेतना को भी उजागर किया है। ग्रामीण परिवेश में बालविवाह की प्रथा का खूब प्रचलन रहा, यह ग्रामीण लोगों की अशिक्षित एवं अनपढ़ होने की निशानी है। बुद्धि, ज्ञान, विद्या का मतलब केवल दस्तखत करने की शिक्षा मात्र है। ग्राम देवियाँ भी गँवारिनों सी विमूढ़ हैं। कवि लिखते हैं कि अनुकम्पा पाकर कन्याएँ माँ बनती हैं, संज्ञान के पहले ही लड़कियाँ सुत को जन्म देती हैं–

''अनुकम्पा पाकर कन्याएँ माँ बनती हैं
नवयुवती होने से पहले सुत जनती हैं।''[15]

'बुंदेलखण्ड के आदमी' नामक रचना में कवि ने वहाँ के लोगों की स्थिति, उनकी विलासप्रियता तथा उनकी समग्र मानसिकता पर प्रकाश डाला है। हट्टे–कट्टे हाड़ों वाले, चौड़ी चकली काठीवाले, थोड़ी सी खेती बाड़ी के आधार पर केवल खाते–पीते जीते रहते हैं, कत्था, चूना, लौंग सुपारी तम्बाकू खा पीकर उगलते रहते हैं, चलते–फिरते बैठे–ठाढ़े गन्दे यश से धरती को रंगते हैं, गुड़गुड़ हुक्का पकड़े खूब धुँआ उड़ाते हैं, फूहड़ बातों की चर्चा करते हैं, दीपक की छोटी बाती की मन्दी उजियारी के नीचे घण्टों आल्हा सुनते हैं, मुरदे जैसा। कवि ने इस ग्रामीण माहौल में कई ग्रामीण खेल भी खेले हैं यथा– आती–पाती, गिल्ली–डंडा, गोली, खो–खो, खेल हुडुडुंवा आदि। वे अपनी प्रियतमा के सामने 'प्यारी! मेरे जन्म गाँव में' उसका वर्णन करते हैं –

''दौड़ दौड़कर आती–पाती, गिल्ली डंडा,
गोली, खो–खो, खेल हुडुडुवा
ऊँच नीचा खेल चुका हूँ।''[16]

''त्रस्त जन के बीच मस्त महाजन को वही देख सकता है, जिसकी दृष्टि प्रगतिशील है। इन चित्रों के द्वारा कवि ने एक फोटोग्राफर की तरह दिखता दिया है कि यही हमारे राष्ट्र के गाँवों का वर्तमान चेहरा है, कितना दारुण, कितना दारुण, कितना वीभत्स। तय है, इसके लिए व्यवस्था जिम्मेदार है। कवि को इस व्यवस्था से नफरत है, इनकार है। कारण कि आलोक को हो गयी है अंधकार में साँठ–गाँठ। इस साँठ–गाँठ। इस साँठ–गाँठ को तोड़ने के लिए कवि सही आदमी को ललकार रहा है।'' कुल मिलाकर प्रस्तुत मत से हम सहमत होते हैं ''केदार के चारों ओर था रूढ़ियों और अंधविश्वासों से जुड़ा, निरन्तर ठगा जाता शोषित–दलित किसान, मुकदमों के चक्करों में तबाह। दूसरी ओर अर्द्धसामन्ती जमींदारी सभ्यता थी, उसका खोखला आडम्बर और पाखण्ड और क्रूर दाँव पेंच साथ था साम्राज्यी शासन का, उसके सहयोग से, नवीन विचारों और आन्दोलनों का निरन्तर दमन। इसी दौर में केदार का अपना खास व्यक्तित्व पुष्ट हुआ और निखरा।''[17] वास्तव में दांपत्य प्रेम से उपजी यह प्रेम से उपजी यह प्रेमानुभूति व्यष्टि से समष्टि की ओर बढ़ती है और यही केदार जी के प्रेम कविताओं की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है– ''केदारनाथ जी का प्रेम मार्क्स और जेनी के प्रेम से मिलता–जुलता है।''[18] इस प्रकार कवि केदार जी की कविताओं में अभिव्यक्त पति–पत्नी संबंधों की मधुरता और गंभीरता को उजागर कर पारिवारिक मूल्यों को साकार किया है।

केदारनाथ अग्रवाल मार्क्सवादी–साम्यवादी विचारधारा के कवि हैं। उनकी कविता लोक–जीवन से जुड़ी हुई है। इसलिए सच्चे अर्थों में केदारजी 'लोककवि' है। देश के समस्त श्रमरत किसान, मजदूर और शोषित की तरह उन्होंने नारी के प्रति भी सद्भावना व्यक्त की हैं। उसके अधिकारों के प्रति सजगता एवं चेतना को जगाया है। अपने जीवन और साहित्य में वे हमेशा नारी स्वातंत्र्य एवं समानाधिकार के पक्षधर रहे हैं। इसी कारण नारी के प्रति सम्मान और विनम्रता उनकी कविता में जगह–जगह विद्यमान है। जैसे–

''आज नदी बिल्कुल उदास थी,/ सोयी थी अपने पानी में/
उसके दर्पण पर बादल का वस्त्र पड़ा था/
मैंने उसको नहीं जगाया/
दबे पाँव घर वापस आया।''[19]

प्रेमिका के रूप में नारी के अस्तित्व की सम्मानजनक स्थिति के कवि हमेशा पक्षधर रहे हैं और यही वजह है कि वह प्रेम स्त्री के प्रेमिका रूप पर ही समाप्त नहीं हो जाता है, बल्कि पत्नी रूप में भी वह प्रेम उसी ताजगी के साथ खिलता और सुवासित होता है। जैसे–

''अब मिले अधिकार मुझको/पूर्णिमा–सा प्यार मुझका/
.....तुम्हें पाऊँ/.....
तुम करो स्वीकार मुझको/ मैं करूँ स्वीकार तुमको।''[20]

कवि की पूरी सहानुभूति श्रमिक तथा पीड़ित वर्ग की नारी के प्रति प्रकट हुई शोषिता दिन–रात श्रम करती है, फिर भी गम के सिवा उसे कुछ नहीं मिलता वह निरंतर भूखे पेट काम करती है और फटे कपड़े पहनती है। ऐसी श्रमशीला नारी सदियों से पुरुष समाज द्वारा शोषित है। नारी के इस शोषित रूप का चित्रण 'जहरी' प्रतीक के माध्यम से कवि ने इस प्रकार किया है–

''पैदा हुई गरीबी में/पली गई गरीबी में/जहरी गयी गरीबी है/.....
चिंतामयी गरीबी हैं/ नहीं मिटी हैं/नहीं मिटी हैं/ नहीं मिटी/''[21]

लेकिन यदि कहीं भी मजदूरी न मिलें तो इन अभागिनियों को परिस्थितिवश अपना शरीर तक को बाजार में नीलाम करने के लिए विवश होना पड़ता है। उसे वेश्यालय का सहारा लेना पड़ता है।

निष्कर्ष – निष्कर्षतः मैं कह सकती हूँ कि केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में ग्राम्य जीवन का दर्द अनेक परिस्थितियों में वर्णित हैं। उनकी सृजनात्मकता ग्रामीण जन–जीवन की दशा सुधारने की दृष्टि से उपयोगी कही जा सकती हैं।

संदर्भ –

[1] केदारनाथ अग्रवाल – आग का आईना, पृष्ठ 65
[2] केदारनाथ अग्रवाल – मार–प्यार की थापें, पृष्ठ 89
[3] केदारनाथ अग्रवाल – गुलमेहंदी, पृष्ठ 67
[4] संपादक अशोक त्रिपाठी – कहे केदार खरी–खरी, पृष्ठ 117
[5] केदारनाथ अग्रवाल – आधुनिक कवि 16, पृष्ठ 42–43
[6] संपादक नरेंद्र पुंडरीक – कविता की बात–केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 26
[7] संपादक डॉ. रामविलास शर्मा – श्रम का सूरज, पृष्ठ 42
[8] डॉ. रामविलास शर्मा – प्रगतिशील काव्य धारा और केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 49
[9] केदारनाथ अग्रवाल – गुलमेहंदी, पृष्ठ 177
[10] वही, पृष्ठ 68
[11] केदारनाथ अग्रवाल – गुलमेहंदी, पृष्ठ 72
[12] केदारनाथ अग्रवाल – जमुन जल तुम, पृष्ठ 121

[13] सर्वनाम, सन् 2011, पृष्ठ 34
[14] केदारनाथ अग्रवाल – आत्मगंध, पृष्ठ 23
[15] संपादक अशोक त्रिपाठी – कुहकी कोयल खड़ी पेड़ की देह, पृष्ठ 244
[16] केदारनाथ अग्रवाल – जमुन जल तुम, पृष्ठ 60
[17] संपादक श्रीप्रकाश – केदार व्यक्तित्व और कृतित्व, पृष्ठ 46
[18] संपादक अजय तिवारी – कवि मित्रों से दूर, पृष्ठ 75
[19] केदारनाथ अग्रवाल – फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृष्ठ 47
[20] केदारनाथ अग्रवाल – जमुन जल तुम, पृष्ठ 99
[21] केदारनाथ अग्रवाल – जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृष्ठ 136